Gyanvividha, Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026 : PP-289-291

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No.- 289-291
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

अंकिता एक्का

सहायक प्राध्यापक, संत जेवियर कॉलेज, महुआडांड़, लातेहार.

Corresponding Author :

अंकिता एक्का

सहायक प्राध्यापक, संत जेवियर कॉलेज, महुआडांड़, लातेहार.

"झारखंड के 21वीं सदी के हिंदी कहानियों में आदिवासी जीवन दर्शन और सांस्कृतिक पहचान"

झारखंड को आदिवासी संस्कृति और परंपराओं से समृद्ध राज्य के रूप में माना जाता है। जंगल-झाड़, हरे-भरे वनों, पहाड़-पर्वतों, खनिज संपदाओ से भरपूर यह राज्य एक आदिवासी बहुल राज्य है। जहां 32 जनजातियां निवास करती है। यहां संथाल, उरांव, मुंडा, हो, खड़िया आदि कई आदिवासी समुदाय निवासरत हैं। प्रकृति की गोद में पलने-बढ़ने और जीवनयापन करने वाले ये आदिवासी देश के मूल निवासी कहलाते हैं। इन समुदायों का जीवन प्रकृति पर पूर्ण रूप से निर्भर रहता है। जल, जंगल, जमीन से इनका गहरा लगाव है। 21वीं सदी की हिंदी कहानियों में झारखंड के आदिवासी समुदायों का जीवन दर्शन, उनकी चेतना, सांस्कृतिक पहचान, परंपराएं, जीवन संघर्ष आदि का जीवन्त वर्णन मिलता है।

'आदिवासी' शब्द का शाब्दिक अर्थ है -आदिकाल से निवास करने वाले लोग । ये वे लोग हैं जिनका किसी भौगोलिक क्षेत्र से सबसे पुराना संबंध रहा हो।[1] आदिवासियों को परिभाषित करने का प्रयास अनेक विद्वानों द्वारा किया गया है जैसे डॉ. विवेकीराय –"पिछड़ी अंचलों, पहाड़ों, वनों के निवासियों को आदिम-आदिवासी माना जाता है।" प्रोफेसर गिलानी- "एक विशिष्ट भू प्रदेश में रहने वाला, समान बोली बोलने वाला, अक्षरों की पहचान न होने वाला समूह गुट आदिवासी।" समाजशास्त्र विश्वकोश में आदिवासी के लिए लिखा है- "किसी देश प्रदेश के वे लोग जो आदिकाल से वहां निवास कर रहे हैं वह उसे देश प्रदेश के मूल निवासी होते हैं।[2] मूल आदिवासी जो पिछड़ा, अज्ञानी, समान बोली बोलने वाला, अंधश्रद्धालु, प्रकृति की गोद में जीवन यापन करने वाला, भारतभू की संतान, संस्कृति का रक्षक को आदिवासी के रूप में पहचाना जाता है।

प्रकृति की गोद में पलने-बढ़ने वाले आदिवासी समुदायों की अपनी अलग पहचान होती है। वे बाहरी आवरण को धारण करने के बजाय प्रकृति में समाहित हर एक वस्तुओं के आवरण को धारण कर अपना जीवन यापन खुशी पूर्वक करते हैं। आदिवासी समुदाय सदियों से शिक्षित और सभ्य लोगों के संपर्क से कटे हुए हैं तथा आधुनिकता से

कोसों दूर में रहकर अपनी सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा करते हुए अपने लिए एक नई दुनिया रचते हैं। जहां उनकी अपनी मान्यताएं, रीति-रिवाज, परंपराएं प्रथाएं, रूढ़िवादी धारणा रहने के बावजूद पर्व त्यौहारों में रस, रंग और नृत्यगान से कतई अछूते नहीं हैं। सदियों से प्रकृति की गोद में पलते हुए वे प्रकृति के रक्षक की भूमिका का निर्वहन करते आए हैं परंतु मुख्य धारा से कटे होने के कारण वे शिक्षा से कोसों दूर रहे हैं और इसी शिक्षा के अभाव में इनके समाज में अनेक बुराइयां, रूढ़ियां और अंधविश्वास आदि व्याप्त हैं।[3]

समकालीन हिंदी कथाकारों के प्रयास से आदिवासी समुदायों के जीवन की वास्तविकताओं को समझते हुए उनके संघर्षगाथा, जातिय परंपरा, धरोहर, अस्तित्व के संकट और उनकी सांस्कृतिक चेतना तथा जीवन के नैतिक मूल्यों जैसे विविध विषयों को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया। आदिवासियों का समूह जहां कहीं भी बसा उनका अपना अलग अस्तित्व एवं पहचान बनाया। 21वीं सदी के आदिवासियों का जीवन पहले से कुछ बेहतर हो चुका है परंतु अभी भी वे कई सारी चुनौतियों का सामना करते नजर आते हैं। उनका संघर्षपूर्ण जीवन व्यक्ति के मानसिक चेतना को और अधिक मजबूत बनाने में प्रयासरत है। आदिवासी अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बरकरार रखते हुए नई चीजों को भी आत्मसात कर रहे हैं।

संस्कृति का समाज से अटूट संबंध रहा है क्योंकि संस्कृति उस समाज की संपत्ति होती है। शादी-विवाह,पर्व-त्यौहार या साप्ताहिक संस्कृतिक कार्यक्रमों के समय अखाड़ा में आदिवासी महिला-पुरुष, लड़के-लड़कियां एवं बच्चे सब मिलजुल कर मांदर, ढोलक एवं नगाड़ा के ताल पर नाचते गाते हैं। यहां कोई दर्शक नहीं होता बल्कि प्रत्येक व्यक्ति एक नायक और नायिका के रूप में होते हैं। इसमें पूरा आदिवासी समुदाय शामिल होता है। समुदायिकता का यह दृश्य अत्यंत अनोखा होता है।[4] समाज में निहित संस्कृति आदिवासी समुदाय के जीवन को संयमित और नियमित तौर से जोड़े रखती है। आरंभ में आदिवासी समुदायों की वेशभूषा झाड़ की पत्तियां हुआ करती थी परंतु सभ्यता के विकास के साथ पत्तियों की जगह लोग कपड़ों का प्रयोग करने लगे। आज भी उनके घरों में मिट्टी के बर्तन, बांस की टोकरियां इत्यादि पाए जाते हैं। हथियार के रूप में टांगिया, हंसिया, सबल, बांस की झांपी इत्यादि का प्रयोग करते हैं। वाद्ययंत्र के रूप में वे नगाड़े, मांदर, ढोल इत्यादि का प्रयोग करते हैं। इस तरह से हर एक आदिवासी समुदाय के पास नृत्य और संगीत का सामान पाया जाता है।

2 करोड़ 88 लाख 46 हजार की जनसंख्या में लगभग 30 प्रतिशत आदिवासी हैं। 2 करोड़ 23 लाख 10 हजार लोग गांवों तथा 65 लाख 36 हजार शहरों में रहते हैं। कहना ना होगा कि अधिकतर आदिवासी दलित तथा अन्य पिछड़े वर्ग के लोग गांव में ही रहते हैं।[5] नेहरू आदिवासी समाज के विकास का जो मॉडल प्रस्तुत किए हैं वह एकदम अलग है। वह आदिवासी समाज का विकास इस तरह करना चाहते थे कि उनको समाज की मुख्य धारा में शामिल किया जाए लेकिन उनकी संस्कृति को बिना किसी तरह नुकसान पहुंचाए हुए।[6] आदिवासीयों का अपने धार्मिक और आर्थिक विश्वासों के प्रति दृढ़ विश्वास होता है। सभ्यता से दूर जंगलों में निवास करने वाले ये आदिवासी अपने जीवन को अनेक कलात्मक उत्पादन से सजाते संवारते हैं। प्रकृति के बिल्कुल समीप होने के कारण उन्हें प्रकृति से मिलने वाले कंदमूल, फल-फूल, जड़ी बूटियां, वनों से मिलने वाली लड़कियों पर इनका पूरा अधिकार होता है। जीव-जंतु, पशु पक्षियां भी इनके सहचर होते हैं। अपने रोगों का निदान वे जादू टोने के माध्यम से करते हैं। कथा, गीत, नृत्य आदि के माध्यम से अपनी सांस्कृतिक परंपरा को इन्होंने अब तक जीवित रखा है।

झारखंड प्रदेश आदिवासी समुदायों का निवास स्थान माना जाता है। जहां ये समुदाय प्राकृति की गोद में पड़े हरे भरे वनों, जल, जंगल, जमीन, पहाड़- पर्वतों, झरनों, नदी -नालों के बीच अपना जीवनयापन सहजता व सरलता से व्यतीत करते हैं जो जन्नत की तरह प्रतीत होता है। इस प्रदेश में बसने वाली आदिवासी समुदाय प्रकृति की तरह ही बिल्कुल निष्कपट, निश्छल, अबोध, सरल और सहज होती है। समाज प्रकृति के नियम अनुसार चलते हैं इसलिए उसने नदी घाटी सभ्यता को अपनाने के बजाय जंगलों में रहना अधिक पसंद किया। आदिवासी लोग प्रकृति के साथ

जीते हैं, प्रकृति से प्यार करते हैं एवं प्रकृति में ही समाहित हो जाते हैं। वह प्रकृति का दोहन नहीं करते बल्कि अपनी मौलिक जरूरत को पूरा करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करते हैं एवं उसकी सुरक्षा संरक्षण एवं संवर्धन भी करते हैं।[7]

हिंदी कथा साहित्य में जिस नई पीढ़ी का आगमन हुआ उस पीढ़ी के कहानीकारों में रणेन्द, अशोक प्रियदर्शी, राकेश कुमार सिंह, पंकज मित्र, जेब अख्तर, अश्विनी कुमार पंकज, कलेश्वर, महुआ मांझी आनंदिता, अनीता शर्मा आदि जैसे कई नये कहानीकार के रूप में उभरे जिन्होंने आदिवासीयों की नई चेतना, नई संवेदनाओं और नये समस्याओं को अपनी कहानी का विषय वस्तु बनाया। यदि पंकज मित्र की बात करें तो उनकी कहानी "सेंदरा" में मुख्यत आदिवासी जीवन का यथार्थ चित्रण एवं उनके संघर्षगाथा की अभिव्यक्ति को दर्शाया गया है तथा जिस विकास की अग्नि में पूरा आदिवासी समुदाय पिस रहा है उस समुदाय का मार्मिक चित्रण गंभीरता के साथ प्रस्तुत किया है। "सेंदरा" कहानी में पंकज मित्र ने मुंडा जनजातियों के शोषण, विस्थापन, और विनाश का चित्रण बखूबी से किया है। उसी तरह कालेश्वर की कहानी सलाम बाटू (2009) तथा मैं जीती हूं (2011) इनकी दो महत्वपूर्ण रचनाएं हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं में कथा की पृष्ठभूमि झारखंड रखा है। उनकी कहानियों में कहीं आदिवासियों के विस्थापन का दर्द है तो कहीं नक्सलियों की दहशत है । वहीं झारखंड के जंगल, नदी, पहाड़, खेतों आदि के चित्र खींचे गए हैं।[8] दूसरी कहानी संग्रह "महुआ मांदल" और "अंधेरा" में बंधुआ मजदूरी, पलामू के जंगलों की कटाई, जंगलों से और अपने घरों से उजड़ने की कहानियों का चित्रण है।[9] अशोक प्रियदर्शी की कहानी "शालवानों का आखिरी पेड़" यह झारखंड के सघन और विस्तृत विभाग में फैला जंगल का चित्रण है जहां साल सागवान, आम, जामुन, महुआ, शीशम जैसे कई कीमती, औषधीय पौधों व वृक्षों से समृद्ध था परन्तु यहां के सुंदर वन धीरे-धीरे समाप्त होते चले गए क्योंकि जंगल के ठेकेदारों ने इस सुंदर व सघन वन, जंगलों को झाड़ियों में तब्दील कर दिए और ना तो वन रहे ना वन्य जीव और न ही वनवासी।[10]

अर्थात झारखंड के 21वीं सदी के हिंदी कहानीकारों की कहानियां कहीं न कहीं झारखंड के आदिवासियों के जीवन-दर्शन और उनकी सांस्कृतिक चेतना को अभिव्यक्त करती है। जीवन की समग्रता का आंकलन कहानियों के माध्यम से आसानी से किया जा सकता है क्योंकि कहानी ही जीवन को सबसे अधिक स्पर्श करने वाली विधा होती है जिसमें सीधे संवाद और संप्रेषण उपलब्ध होते हैं। अतः झारखंड की आदिवासी समुदायों की जीवन शैली, उनकी सांस्कृतिक चेतना तथा प्रकृति की बहू रंगीन रूप का चित्रण देखना समझना हो तो झारखंड की 21 वीं सदी की कहानियां इसका जीवंत उदाहरण हैं।

संदर्भ सूची :

1. ग्लैडसन डुंगडुंग, आदिवासियत एक अद्भुत जीवन-दर्शन, आदिवासी पब्लिकेशन,रांची, प्र. सं. अक्टू. 2023, पृ.-13.
2. डॉ. सविता चौधरी, हिंदी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श, रोली प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 2017, पृष्ठ-24.
3. डॉ.एम. फिरोज खान, डॉ. शगुफ्ता नियाज, साहित्य के आईने में आदिवासी विमर्श, वांगमय बुक्स प्रकाशन अलीगढ़, प्र. सं. 2015, पृष्ठ-167.
4. ग्लैडसन डुंगडुंग, आदिवासियत एक अद्भुत जीवन दर्शन, आदिवासी पब्लिकेशन रांची, प्र. सं. अक्टू. 2023, पृ.-22.
5. डॉ. एम. फिरोज खान, डॉ. शगुफ्ता नियाज, साहित्य के आईने में आदिवासी विमर्श, वांगमय बुक्स प्रकाशन अलीगढ़, प्र. सं. 2015, पृष्ठ-63.
6. वही, पृष्ठ-55.
7. ग्लैडसन डुंगडुंग, आदिवासीयत एक अद्भुत जीवन दर्शन, आदिवासी पब्लिकेशन रांची, प्र. सं. अक्टू. 2023, पृ.-18.
8. डॉ. त्रिभुवन कुमार साही, झारखंड के स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्यकार, झारखंड झरोखा, प्र. सं. 2017, पृ.-158.
9. वही, पृ.-159.
10. डॉ. विभाशंकर, झारखंड का हिंदी साहित्य, विकल्प प्रकाशन दिल्ली, प्र. सं. 2021, पृ.-63.